मधुबनी चित्रकला

बिहार की लोक चित्रकला की समृद्ध परंपरा में मिथिला की रंगीन चित्रकारी को अंतरराष्ट्रीय प्रसिद्धि मिली है। अत्यंत प्राचीनकाल से चली आ रही चित्रकारी की इस परंपरा ने समय-समय पर प्रबुद्धजनों का ध्यान आकर्षित किया है। प्रसिद्ध चित्रकार उपेन्द्र महारथी मिथिला चित्रकारी से इतने प्रभावित हुए थे कि संपूर्ण बिहार की लोक चित्रकारी पर शोध और अध्ययन करने में वर्षों का समय लगाया था। मिथिला चित्रकला की विशिष्टताओं को उन्होंने चित्रकला के विशेषज्ञों के समक्ष पूरे महत्त्व के साथ उजागर किया था।

मिथिला लोकचित्र (छायांकन : अभिषेक चौबे)

लोक संस्कृति में पढ़े-लिखे संभ्रांत पुरुष वर्ग की अपेक्षा महिला समाज तथा विद्वत्ता-विशेषज्ञता से दूर जनसामान्य का महत्त्व अधिक हुआ करता है। मिथिला की चित्रकला में भी महिला वर्ग की प्रधानता निर्विवाद रही है परंतु पढ़े-लिखे कलाप्रेमी जनों के प्रभाव ने प्रसिद्धि देने के साथ ही उसमें अनेक परिष्कार भी पैदा किये हैं। कभी मात्र जमीन, भित्ति और कपड़े तक सीमित इस चित्रकारी को कागज तथा कैनवास पर भी अंकन मिलने लगा है। पहले उसमें कलाकारों के परिवार में निर्मित प्राकृतिक रंगों के ही प्रयोग होते थे परंतु अब उसमें कृत्रिम रंगों का उपयोग भी खुलकर हो रहा है।

मिथिला लोकचित्र (छायांकन : अभिषेक चौबे)

मिथिलांचल की इस लोक चित्रकला को मधुबनी चित्र या मधुबनी पेंटिंग के नाम से प्रसिद्धि मिली है। इस चित्र के रंग, विषय, शैली और चित्रकार वर्ग में विविधता रही है। संभ्रांत समाज से अलग कुछ दलित जाति के परिवारों में इसके एक स्वतंत्र रूप का विकास हुआ है। उनकी भी अपनी परंपरा रही है। ब्राह्मणों तथा कायस्थ परिवारों में विकसित शैलियों में रंग और चित्रण की सूक्ष्म भिन्नताएँ देखी जाती हैं। वैसे समग्रता में देखा जाय तो मिथिला चित्रकला में तीन प्रमुख रूप दिखाई पड़ते हैं– 1. भूमि आकल्पन, 2. भित्ति चित्रण और 3. पट चित्रण। यानी जमीन पर अल्पना बनाना, दीवार पर की गयी चित्रकारी (कोहबर आदि) और कपड़े पर चित्रकारी।

©CBSE NOT TO BE PRINTED

मिथिला लोकचित्र (छायांकन : अभिषेक चौबे)

भूमि आकल्पन : भूमि आकल्पन की परंपरा प्राय: हर संस्कृति में रही है। महाराष्ट्र की रंगोली, गुजरात की साँथिया उत्तर प्रदेश के व्रज क्षेत्र की साँझी, पहाड़ी क्षेत्र की आँजी, राजस्थान की माँडना, दक्षिणी प्रदेशों का ओलम, असम की अल्पन आदि भूमि आकल्पना के ही विभिन्न रूप हैं। बिहार में इसे चौका पूरना कहा जाता है जो पूजा-पाठ के समय कलश स्थापन की जगह अनिवार्य होता है। इसे ही मिथिला में आश्विन या अरिपन कहा जाता है। यह अरिपन मिथिला में भी किसी पूजा, उत्सव या अनुष्ठान अथवा विवाह जैसे मांगलिक अवसर का भूमि चित्र हुआ करता है। विवाह के समय के अरिपन में कमल, मछली, पुरइन (कमल का पत्ता), बाँस आदि के चित्र बनाये जाते हैं।

भित्ति चित्र : भूमि आकल्पन यानी भूमि पर किये जाने वाले चित्रांकन की अपेक्षा भित्तिचित्र यानी दीवार पर बनाये जाने वाले चित्रों में अधिक कलात्मकता देखी जाती है। उसकी भावप्रवणता तथा कल्पनाशीलता अधिक प्रभाव पैदा करती है। उसमें स्थायित्व भी अधिक होता है। मिथिलांचल के भित्तिचित्रों में सर्वाधिक कलात्मकता कोहबर-लेखन में दिखाई पड़ती है।

मिथिलांचल में यानी मधुबनी चित्रकला के कोहबर चित्रों में तीन भाग होते हैं– क. गोसाईं घर (कुलदेवता का स्थान), ख. कोहबर घर (जहाँ नव दंपती पहली बार मिलते हैं) और ग. कोहबर घर का कोनिया (कोहबर का बाहरी भाग)। तीनों जगहों पर चित्रांकन के रूप अलग-अलग होते हैं।

कोहबर चित्रांकन चतुष्कोणीय (आयताकार या वर्गाकार) होता है। उसमें तोता, बाँस, कमल का पत्ता, कछुआ और मछली के अलावा नैना जोगिन और सामा-चकेवा के चित्रांकन की भी परंपरा है। वैवाहिक अवसर पर ही कोहबर का अंकन होता है और वह कोई महिला ही करती है। कोहबर के चित्रांकन में अनार की डंडी की कलम तथा रूई से बनी तूलिका (ब्रश) का उपयोग किया जाता है। मिथिला के भित्तिचित्रों में राधाकृष्ण की रासलीला, राम-सीता-विवाह, जट-जटिन आदि पौराणिक और लोक कथाओं के भी चित्रण होते हैं।

पट चित्रण : पट चित्रण की परंपरा ने मिथिलांचल की रंगीन चित्रकला को उत्कर्ष तथा प्रसिद्धि के शिखरों का स्पर्श कराया है। माना जाता है कि विद्यापति के समकालीन राजा शिवसिंह के काल में पट चित्रण कला को विशेष विकास मिला। विभिन्न प्रसंगों के दृश्य कपड़े पर अंकित करने की उस परंपरा का ही विकास आज कागज या कैनवासों पर दिखाई पड़ता है।

मिथिलांचल की इस प्रसिद्ध चित्रकला में रेखा तथा रंग के अनेक सूक्ष्म प्रयोग देखे जाते हैं। चित्र का किनारों (बॉर्डर) से घिरा होना इसमें आवश्यक होता है और दुहरी रेखाओं वाली किनारी में मछली, फूल, फल, चिड़ियाँ आदि का अंकन होता है। किनारी यानी सीमा रेखा के अंदर चित्रित दृश्य या प्रसंगों में जरूरी होता है कि रेखा और रंग से कोई स्थान खाली नहीं बचे। खाली जगहों को भरने में प्रकृति और पशु-पक्षियों के चित्र सहायक होते हैं।

अब तो मधुबनी पेंटिंग के नाम से ख्यात इस चित्रकला के मुद्रित रूप भी मिलते हैं परंतु मूलतः इसमें पहले प्राकृतिक रंगों का ही प्रयोग हुआ करता था। चित्रकार अपने घर में ही स्वयं रंग बनाते थे। विभिन्न फूल, फल, छाल आदि से बनने वाले रंगों में करजनी की फली, दीप की फुलिया, पेवरी, रामरस, सिंदूर, नील आदि के सहारे अनेक रंग बनते थे जिनमें बबूल के गोंद का सामान्य प्रयोग होता था। मधुबनी चित्रकार गोमूत्र, नील, गेरु, बकरी का दूध, कौड़ी, मोती, ताँबा, तूतिया, लाजवर्त (रत्न) आदि से बने रंगों का भी प्रयोग करते रहे हैं।

मिथिला की चित्रकारी यानी मधुबनी पेंटिंग का संबंध विभिन्न पूजा-पाठ और मांगलिक अवसरों से तो रहा ही है उसका एक प्रमुख भाग तांत्रिक उद्देश्यों से भी जुड़ा रहा है। वैसे चित्रों में चार महादेवियों महालक्ष्मी, महासरस्वती, महाकाली और चामुण्डा के चित्रांकन मिलते हैं। काली,

कमला, तारा, छिन्नमस्ता, मातंगी, षोडशी, भैरवी, भुवनेश्वरी, धूमावती और बगलामुखी– इन दस महाविद्याओं के चित्रांकन की परंपरा भी रही है।

मिथिला चित्रकला को सुरक्षित रखने और विकास देने वाले ब्राह्मण और कायस्थ परिवारों के चित्रों में अनुष्ठान, संस्कार और सौन्दर्य की प्रमुखता रही है। इनसे भिन्न कुछ दलित परिवारों में गोबर के रस तथा काले रंग के सहारे चित्रकारी होती रही है और उनके द्वारा गृहीत विषय लोकजीवन के यथार्थ से अपेक्षाकृत अधिक भरे होते हैं।

मिथिला चित्रकला में जितवारपुर की सीता देवी, जगदंबा देवी, ऊषा देवी, यमुना देवी और राठी की महासुन्दरी देवी को विशेष प्रसिद्धि मिली है। जगदंबा देवी को 1970 ई० में राष्ट्रीय हस्तशिल्प पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। सीता देवी (1975), रसीदपुर की गंगा देवी (1976), राटी की गोदावरी दत्ता (1980), महासुंदरी देवी और लहरियागंज की शांति देवी को भी उनकी चित्रकारी के लिए राष्ट्रीय हस्तशिल्प पुरस्कार मिल चुके हैं। 1986 ई० में शिवन पासवान को भी इस पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। जगदंबा देवी, सीता देवी तथा गंगा देवी को क्रमशः सन् 1975, 1981 और 1984 में भारत सरकार ने पद्मश्री से भी अलंकृत किया था।

मिथिला की चित्रकला में आधुनिक रासायनिक रंगों के प्रयोग होने लगने के अलावा अन्य कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। उसमें कलाकार के परिवेश तथा उसकी व्यक्तिगत रुचि के अनुकूल विभिन्न प्रयोगों की संभावनाएँ बनी हुई हैं। रेखाप्रधान चित्र होने के कारण इस चित्रकला में रेखा या रंग की अस्पष्टता कहीं दिखाई नहीं पड़ती। प्रसंग या व्यक्ति के भाव की व्यंजना करा देने की प्रमुखता के बावजूद चित्र में खाली जगहों को भरने या सजावट करने में कलाकार की रुचि तथा श्रम के भरपूर प्रमाण मिलते हैं। कहा जाता है कि चित्रकारी में खाली स्थान रहने पर उसमें दुष्ट आत्मा का प्रवेश हो जाता है। चित्रकार वैसे स्थानों को फूल, पत्ते, टहनी आदि के चित्रों से भर देता है। अनार की कलम, बाँस की कूँची, सींक या बाँस की तिली में लगी रूई और स्वनिर्मित रंगों के सहारे ही मधुबनी चित्रकला ने एक तरफ हजारों वर्ष पुरानी अपनी विरासत को बचा रखा है तो दूसरी तरफ अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करने जैसी उपलब्धि भी हासिल की है।

अभ्यास

1. मधुबनी चित्रकला क्या है? परिचय दीजिए।
2. मधुबनी चित्रकला के कितने रूप प्रचलित हैं?

3. कोहबर चित्रकारी क्या है? बताइए।
4. मधुबनी चित्रकला में रंग प्रयोग की विशेषता बताइए।
5. मधुबनी चित्रकला को ख्याति दिलाने में किस चित्रकार ने विशेष भूमिका निभाई?
6. भूमि आकल्पन से आप क्या समझते हैं? परिचय दीजिए।
7. मधुबनी चित्रकला के कितने रूप प्रचलित हैं?
8. मधुबनी चित्रकला में खाली स्थान क्यों नहीं छोड़े जाते हैं?
9. मधुबनी चित्रकला के दलित चित्रकार वाले रूप की कुछ सामान्य विशेषताएँ बताइए।

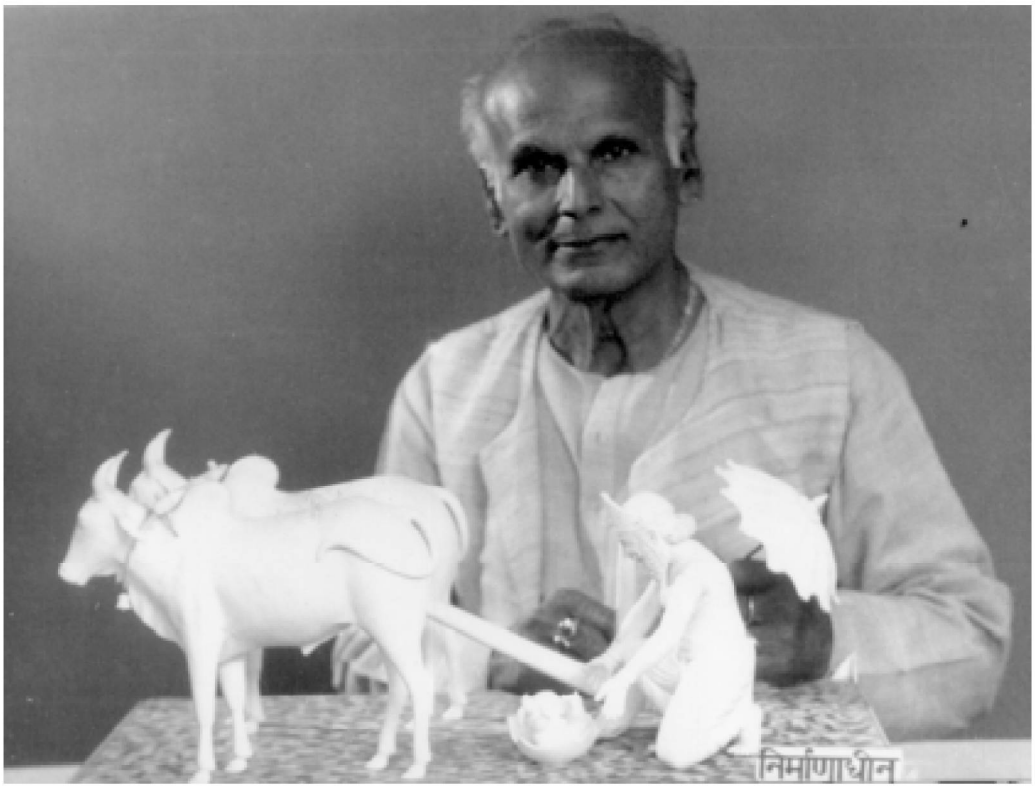

फणीभूषण विश्वास
निर्माणाधीन 'जानकी उद्भव' के साथ